पुनरीक्षण अपराधी

गुरदेव सिंह और एस.एस. संधावालिया से पहले, जे.जे.

सरल ब्योपार एसोसिएशन लिमिटेड, जगाधरी,-याचिकाकर्ता।

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य,-प्रतिवादी।

1967 का आपराधिक पुनरीक्षण क्रमांक |6-एम

24 दिसंबर 1969.

दंड प्रक्रिया संहिता (1898 का 5)-धारा 561-क-उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए-क्या पुलिस द्वारा संज्ञेय अपराध में कानूनी जांच को रद्द किया जा सकता है-प्रथम सूचना रिपोर्ट जिसमें ऐसे अपराध के होने का खुलासा नहीं किया गया है-उसके परिणामस्वरूप जांच-क्या इसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है।

अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-क के अधीन अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, उस अपराध की जाँच में हस्तक्षेप नहीं करेगा जिसके लिए पुलिस को विधिपूर्वक अभिगृहीत किया गया है। यह अभिधारणा है कि पुलिस के पास पक्षपातपूर्ण मामले की जाँच करने का कानूनी अधिकार होना चाहिए और जाँच कानून के प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए। यदि पुलिस के पास किसी अपराध की जांच करने का कोई अधिकार नहीं है या कानून के किसी प्रावधान के उल्लंघन में जांच कर रही है, तो अदालत को जांच एजेंसी को कानून की सीमा में रखने के लिए कदम उठाने का अधिकार होगा। पुलिस को कानून द्वारा प्रदत्त अपने अधिकार की सीमा के भीतर कार्य करना पड़ता है, और यदि वह उन सीमाओं को पार करती है या अपराधों की जांच से संबंधित प्रावधानों का उल्लंघन करती है, तो पीड़ित पक्ष को पर्याप्त राहत दी जा सकती है, लेकिन ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए भी, न्यायालय को अत्यधिक सावधानी के साथ कार्य करना पड़ता है। संहिता की धारा 561-ए के तहत शक्तियों का प्रयोग केवल असाधारण मामलों में और सबसे कम समय में किया जाना है। ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय को अपराध की जाँच में हस्तक्षेप करने के जोखिम से बचना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप यदि आगे बढ़ने की अनुमति दी जाती है तो अपराधियों को कानून के दायरे में लाया जा सकता है।

अभिनिर्धारित किया गया कि किसी जांच में केवल इसलिए हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है क्योंकि पुलिस के पास दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट या वह जानकारी जिसके आधार पर पुलिस जांच शुरू करती है, एक संज्ञेय अपराध नहीं है। संहिता की धारा 156 और 157 में यह अपेक्षा नहीं की गई है कि पुलिस द्वारा जांच हाथ में लेने से पहले, एक लिखित रिपोर्ट होनी चाहिए जिसमें एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करने वाले तथ्य होने चाहिए। इसलिए, यह कहना गलत है जब तक कि पुलिस न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम है कि उसके पास संज्ञेय अपराध के बारे में जानकारी है, वह जांच के लिए आगे नहीं बढ़ सकती है। कुछ मामलों में, कुछ जांच के बाद ही पुलिस यह पता लगाने की स्थिति में होगी कि कोई संज्ञेय अपराध किया गया है या नहीं। ऐसे मामलों में जांच रोकने की शक्ति, यदि प्रयोग की जाती है, यह मानते हुए कि ऐसी शक्ति संहिता की धारा 561-ए के तहत न्यायालय में निहित है, न्याय के उद्देश्यों को बढ़ावा देने से बहुत दूर है, स्वयं न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है, इस प्रकार उन उद्देश्यों को विफल कर सकता है जिनके लिए न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना है।

माननीय न्यायमूर्ति एस. एस. संधवालिया द्वारा 9 अक्टूबर, 1968 को इस मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ को भेजा गया मामला। माननीय न्यायमूर्ति श्री बलदेव सिंह और माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. एस. संधवालिया की खंडपीठ ने अंततः 24 दिसंबर, 1969 को मामले का फैसला सुनाया।

धारा 561-ए आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत याचिका जिसमें F.I.R का अनुरोध किया गया है। नं. 197/64, दिनांक 18 दिसम्बर, 1964, यू/एस 17,20-डी और टी के 21! अग्रेषित संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1952 को निरस्त किया जाए और आगे प्रार्थना की जाए कि पुलिस, जगाधरी को याचिकाकर्ता, निदेशकों या कर्मचारियों को अलग-अलग समय पर पुलिस स्टेशन में बुलाकर और उनके दिन-प्रतिदिन के काम में हस्तक्षेप करके परेशान नहीं करने का आदेश दिया जाए और यह भी आदेश दिया जाए कि याचिकाकर्ताओं से जब्त किए गए रिकॉर्ड याचिकाकर्ता को वापस कर दिए जाएं।

याचिकाकर्ताओं के लिए वाई. पी. गांधी, अधिवक्ता।

के. एल. जग्गा, सहायक अधिवक्ता-सामान्य, उत्तरदाताओं के लिए।

निर्णय

गुरदेव सिंह, जे। इस आवेदन में, हमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत इस न्यायालय की आपराधिक मामले में हस्तक्षेप करने की शक्तियों के दायरे और विस्तार पर विचार करने के लिए कहा गया है, जो अभी तक जांच के चरण में है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत कोई शिकायत या रिपोर्ट अपराध का संज्ञान लेने के लिए सक्षम न्यायालय को प्रस्तुत नहीं की गई है।

(2) याचिकाकर्ता सरल बीओपर एसोसिएशन लिमिटेड, जगाधरी, भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत निगमित एक सीमित कंपनी। इसके संगठन ज्ञापन के तहत, अन्य गतिविधियों के अलावा, यह अलौह धातुओं में व्यापार और सौदा करने, पक्का आर्टिया के रूप में कार्य करने और उपरोक्त व्यापार के संबंध में अपने शेयरधारकों और सदस्यों के साथ अलग-अलग समझौते करने का भी हकदार है। 8 अक्टूबर, 1964 को जगाधरी के राम कुमार ने पुलिस अधीक्षक को एक लिखित शिकायत की जिसमें याचिकाकर्ता-कंपनी पर फॉरवर्ड कॉन्ट्रैक्ट्स (रेगुलेशन) एक्ट, 1952 के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन का आरोप लगाया गया था, जिस पर कंपनी के खिलाफ थाना जगाधरी में 18 दिसंबर, 1964 को अधिनियम की धारा 17,20 और 21 के तहत मामला दर्ज किया गया था। जाँच के दौरान याचिकाकर्ता के रिकॉर्ड का हिस्सा जब्त कर लिया गया। जांच लगभग तीन वर्षों से लंबित रहने के कारण, 1 अगस्त, 1967 को याचिकाकर्ता-कंपनी ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को शामिल करते हुए निम्नलिखित अनुरोध के साथ वर्तमान याचिका पेश की हैः-"याचिका को प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करके स्वीकार किया जाए और न्याय के हित में पुस्तकों या किसी अन्य उपयुक्त आदेश को वापस करने का आदेश देकर भी पारित किया जा सकता है, जो याचिकाकर्ता, कंपनी के अन्य सदस्यों और निदेशकों को बचा सकता है।

(3) इस तर्क के समर्थन में, यह दावा किया जाता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप पूरी तरह से झूठे, तुच्छ और दुर्भावनापूर्ण हैं, कि भले ही उन सभी आरोपों को सही माना जाए, किसी भी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है और यह कि पुलिस कंपनी के सदस्यों, निदेशकों और कर्मचारियों को परेशान करने के लिए अनावश्यक रूप से जांच को लम्बा खींच रही थी। जब मामला मूल रूप से मेरे विद्वान भाई न्यायमूर्ति संधवालिया के समक्ष आया, तो राज्य की ओर से एक प्रारंभिक आपत्ति ली गई कि मामला एक ऐसे अपराध के लिए दर्ज किया गया था, जो कि दंडनीय था, पुलिस को इसकी जांच करने का वैधानिक अधिकार था, और आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 439 या धारा 561-ए के तहत जांच में हस्तक्षेप या रोक नहीं लगाई जा सकती थी। यह राय होने के कारण कि उठाया गया मुद्दा काफी महत्वपूर्ण था और इसके बार-बार उठने की संभावना थी, मेरे विद्वान भाई ने निर्देश दिया कि इस मामले पर एक बड़ी पीठ द्वारा विचार किया जाए।

(4) संधावलिया, न्यायमूर्ति द्वारा अपने संदर्भ आदेश में तैयार किया गया प्रश्न, जिस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है, इस प्रकार हैः-"क्या उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत, पुलिस द्वारा जांच के लंबित रहने के दौरान और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत एक रिपोर्ट के समक्ष आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने और रद्द करने के लिए एक उपयुक्त मामले में सशक्त किया गया है, जिसे सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय में दायर किया गया है?

(5) पुलिस को दी गई सूचना और उसकी जांच करने की शक्ति के संबंध में प्रावधान दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अध्याय 14 में निहित हैं, जिसे इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित किया गया है। यह धारा 154 से शुरू होती है जो एक संज्ञेय अपराध के संबंध में पुलिस को दी गई जानकारी पर प्रथम सूचना रिपोर्ट के रूप में जानी जाती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155, ऐसे अपराध की सूचना के अभिलेखन से संबंधित है जो संज्ञेय नहीं है, उपधारा (2) जिसमें यह उपबंध हैः-"कोई भी पुलिस अधिकारी प्रथम या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी गैर-संज्ञेय मामले की जाँच नहीं करेगा, जिसे ऐसे मामले का विचारण करने या उसे विचारण के लिए करने की शक्ति है, या प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के।

(6) संज्ञेय अपराधों के अन्वेषण का उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 में किया गया है, जो इन शब्दों में हैः-"156।(1) पुलिस-चौकी का प्रभारी कोई भी अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी संज्ञेय मामले की जाँच कर सकता है, जिसे स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को जांच या विचारण के स्थान से संबंधित अध्याय XV के प्रावधानों के तहत जाँच करने या मुकदमा चलाने की शक्ति होगी।

(2) ऐसे किसी मामले में किसी पुलिस अधिकारी की किसी भी कार्यवाही पर किसी भी स्तर पर इस आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा कि मामला ऐसा था जिसे ऐसे अधिकारी को इस धारा के तहत जांच करने का अधिकार नहीं था।

(3) धारा 190 के तहत सशक्त कोई भी मजिस्ट्रेट ऊपर उल्लिखित जांच का आदेश दे सकता है।

(7) संहिता में प्रावधान भी किया गया है ताकि पुलिस को किसी अपराध की जांच करने में सक्षम बनाया जा सके, भले ही उसके पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के तहत कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई हो। यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के तहत पाया जाता है, जो हमारे उद्देश्यों के लिए जहां तक प्रासंगिक है, नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः —

"157. (1) यदि प्राप्त सूचना से या अन्यथा, किसी पुलिस-स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को किसी अपराध के होने का संदेह करने का कारण है, जिसकी जांच करने के लिए उसे धारा 156 के तहत अधिकार दिया गया है, तो वह तुरंत पुलिस रिपोर्ट पर ऐसे अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को उसी की रिपोर्ट भेजेगा, और व्यक्तिगत रूप से आगे बढ़ेगा, या अपने अधीनस्थ अधिकारियों में से एक को (जो राज्य सरकार, सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, इस संबंध में निर्धारित रैंक से कम नहीं होगा) अपराधी की खोज और गिरफ्तारी के लिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच (और यदि आवश्यक हो, उपाय करने के लिए) करने के लिए मौके पर आगे बढ़ने के लिए प्रतिनियुक्त करेगाः

(8) इस अध्याय के बाद के उपबंध जाँच अधिकारी को गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए, गवाहों से पूछताछ करने के लिए, तलाशी लेने के लिए, अभियुक्त के इकबालिया बयान दर्ज करने के लिए और मामले की जाँच के लिए आवश्यक अन्य कदम उठाने के लिए अधिकृत करते हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन, यदि किसी अभियुक्त व्यक्ति को जाँच के क्रम में गिरफ्तार किया जाता है और जाँच धारा 61 द्वारा निर्धारित 24 घंटे की अवधि के भीतर पूरी नहीं की जा सकती है, तो जाँच करने वाले पुलिस अधिकारी से अभियुक्त को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने की अपेक्षा की जाती है, जो समय-समय पर अभियुक्त को ऐसी अभिरक्षा में हिरासत में रखने को प्राधिकृत कर सकता है जो वह उचित समझे। जाँच के पूरा होने पर पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी से अपेक्षा की जाती है कि वह धारा 173 के तहत निर्धारित तरीके से मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट भेजे, जिसे पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति है। इसके बाद न्यायालय मामले का संज्ञान लेता है और अपनी जांच या मुकदमे के साथ आगे बढ़ता है, जैसा भी मामला हो।

(9) संहिता के अध्याय XIV में निर्धारित तरीके से पुलिस द्वारा किए गए मामले की जांच को रोकने के लिए उच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को सशक्त बनाने वाली संहिता में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है। तथापि, याचिकाकर्ता की ओर से यह प्रतिवाद किया गया है कि यह न्यायालय शक्तिहीन नहीं है और उपयुक्त मामलों में, जैसे कि संहिता के अध्याय XIV में अंतर्विष्ट उपबंधों का उल्लंघन करते हुए या किसी नागरिक को परेशान करते

हुए या न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करते हुए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए विधि के शासन का पालन सुनिश्चित करने के लिए जांच में कदम उठा सकता है और रोक सकता है, जो यह उपबंध करता हैः-"इस संहिता की किसी बात को इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए ऐसे आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाला नहीं समझा जाएगा।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नईम में यह कहा गया थाः-"अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि यह धारा उच्च न्यायालय को कोई नई शक्तियां प्रदान नहीं करती है। यह केवल न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक (अन्य उद्देश्यों के साथ) उच्च न्यायालय के पास मौजूद सभी मौजूदा अंतर्निहित शक्तियों की रक्षा करता है।

न्यायाधीश एस. के. दास ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए आगे कहाः "इस धारा में यह प्रावधान किया गया है कि वे शक्तियां जो न्यायालय के पास स्वाभाविक रूप से हैं, उन्हें संरक्षित किया जाएगा ताकि यह माना जा सके कि न्यायालय के पास केवल वे शक्तियां हैं जो संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई हैं और कोई भी अंतर्निहित शक्तियां संहिता के पारित होने से बची नहीं थीं (देखें जयराम दास बनाम सम्राट, और सम्राट बनाम नजीर अहमद)।

(10) उसी प्रभाव के लिए उस न्यायालय द्वारा आर. पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य में की गई अन्य टिप्पणियां हैं। उस मामले में आर. पी. कपूर, जिनके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 420-109,114 और 120 बी के तहत अपराधों के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, ने उस प्रथम सूचना रिपोर्ट द्वारा शुरू की गई कार्यवाही को रद्द करने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय का रुख किया। अदालत में आवेदन के लंबित रहने के दौरान, हालांकि, जांच पूरी हो गई थी और पुलिस ने संहिता की धारा 173 के तहत अपनी रिपोर्ट दर्ज की थी। इस प्रकार इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया कि क्या उच्च न्यायालय जांच को रोकने और प्रथम सूचना रिपोर्ट और उस पर की गई कार्यवाही को रद्द करने के लिए सक्षम था, इससे पहले कि मामला न्यायालय में रखा गया था।

हालाँकि, अभियुक्तों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अपने लॉर्डशिप्स के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि उनके खिलाफ एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं और चूंकि इससे उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, इसलिए मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित कार्यवाही को रद्द कर दिया जाना चाहिए। इस संदर्भ में गजेंद्रगडकर, जे. (जैसा कि वे उस समय कर रहे थे) ऐसी कार्यवाहियों को निरस्त करने की उच्च न्यायालय की शक्तियों के बारे में विचार करते हुए निम्नलिखित रूप में कहा गयाः-"यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का उपयोग किसी उचित मामले में कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है। आम तौर पर एक अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही पर संहिता के प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए, और उच्च न्यायालय अंतर्वर्ती स्तर पर उक्त कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक होगा। इस अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले किसी भी अनम्य नियम को निर्धारित करना संभव, वांछनीय या समीचीन नहीं है। हालांकि, हम कुछ श्रेणियों के मामलों का संकेत दे सकते हैं जहां कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां उच्च न्यायालय के लिए यह दृष्टिकोण रखना संभव हो सकता है कि किसी अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही की स्थापना या निरंतरता अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकती है या यह कि विवादित कार्यवाही को रद्द करने से न्याय का उद्देश्य सुरक्षित हो जाएगा।

(11) जिन मामलों में ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, उनमें उसके अधिपति ने ऐसे मामले का उल्लेख किया है जिसमें पूर्व मंजूरी, जहां आवश्यक हो, प्राप्त नहीं की जाती है, और ऐसा मामला भी जिसमें प्रथम सूचना

रिपोर्ट या शिकायत में आरोप, भले ही उनके अंकित मूल्य पर लिए गए हों और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किए गए हों, अपराध नहीं हैं।

(12) याचिकाकर्ता की ओर से, यह तर्क दिया जाता है कि वही सिद्धांत उन कार्यवाहियों पर लागू किया जाना चाहिए जो अभी भी जांच लंबित हैं और यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट, जिसके आधार पर जांच की जाती है, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है या जांच अनुचित रूप से लंबे समय तक चलती है और लंबे समय तक लटकती रहती है, जैसे कि अभियुक्त के सिर पर डेमोक्लिस की कहावत तलवार, इस न्यायालय को अभियुक्त के उत्पीड़न को रोकने और न्याय के हितों को सुरक्षित करने के लिए कदम उठाना चाहिए। आर. पी. कपूर के मामले में निर्णय, जिस पर याचिकाकर्ता की ओर से भरोसा रखा गया है, जैसा कि पहले देखा गया है, वास्तव में अलग है, क्योंकि उस मामले में, उच्च न्यायालय में कार्यवाही के लंबित होने के दौरान, जांच पूरी हो गई थी और पुलिस ने संहिता की धारा 173 के तहत अपनी रिपोर्ट दर्ज की थी। जिस प्राधिकारी का इस मुद्दे से सीधा संबंध है, वह पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एस. एन. बसाक में उस न्यायालय का बाद का निर्णय है, जिसमें यह इस प्रकार कहा गया थाः-"उस समय कोई मामला लंबित नहीं था सिवाय इसके कि प्रतिवादी न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ था, आत्मसमर्पण कर दिया था और उसे जमानत पर स्वीकार कर लिया गया था। संज्ञेय अपराधों में जाँच की शक्तियाँ दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XIV में निहित हैं। धारा 154, जो उस अध्याय में संज्ञेय अपराधों में सूचना से संबंधित है और धारा 156 ऐसे अपराधों के अन्वेषण से संबंधित है और इन धाराओं के अधीन पुलिस को मजिस्ट्रेट के अधिकार के बिना किसी कथित संज्ञेय अपराधों की परिस्थितियों में अन्वेषण करने का वैधानिक अधिकार है और अन्वेषण करने की पुलिस की इस वैधानिक शक्ति में धारा 439 के अधीन शक्ति के प्रयोग द्वारा या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-क के अधीन न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के अधीन हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

(13) उनके अधिपत्य ने तब सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद में प्रिवी काउंसिल के निर्णय का उल्लेख किया और कहा कि वे न्यायिक समिति द्वारा पुलिस के वैधानिक कर्तव्यों और शक्तियों और न्यायालय की शक्तियों पर की गई व्याख्या के अनुरूप थे। ख्वाजा नजीर अहमद के मामले में न्यायिक समिति के उनके अध्यक्षों द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियां, जो सीधे बिंदु में हैं, ये हैंः

"भारत में जैसा कि दिखाया गया है कि न्यायिक अधिकारियों से किसी प्राधिकरण की आवश्यकता के बिना एक कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने के लिए पुलिस की ओर से एक वैधानिक अधिकार है, और यह एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा, जैसा कि उनके लॉर्डशिप्स सोचते हैं, अगर यह माना जाना चाहिए कि अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके उन वैधानिक अधिकारों में हस्तक्षेप करना संभव है। न्यायपालिका और पुलिस के कार्य परस्पर पूरक नहीं हैं और कानून और व्यवस्था के उचित पालन के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संयोजन केवल प्रत्येक को अपने स्वयं के कार्य का प्रयोग करने के लिए छोड़ने से प्राप्त किया जा सकता है, हमेशा, निश्चित रूप से, न्यायालय के अधिकार के अधीन जब धारा 491, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश देने के लिए एक उपयुक्त मामले में हस्तक्षेप करने के लिए स्थानांतरित किया जाता है। हालाँकि, वर्तमान जैसे मामले में, न्यायालय के कार्य तब शुरू होते हैं जब उसके समक्ष आरोप लगाया जाता है और तब तक नहीं।

(14) ये टिप्पणियां निश्चित रूप से राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वकील के इस तर्क के समर्थन में जाती हैं कि यदि पुलिस को जांच के वैध रूप से जब्त कर लिया जाता है, तो न्यायालय इसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा। हालाँकि, यह याचिकाकर्ता के वकील द्वारा तर्क दिया गया है कि प्रिवी काउंसिल के उनके लॉर्डशिप द्वारा निर्धारित नियम इस न्यायालय को संहिता की धारा 561-ए के तहत हस्तक्षेप करने से नहीं रोकेगा, जहां पुलिस के पास दर्ज रिपोर्ट प्रथम दृष्टया किसी अपराध या केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है, जिसकी जांच करने का पुलिस को मजिस्ट्रेट की अनुमति के अलावा कोई अधिकार नहीं है। इस तर्क के समर्थन में, ख्वाजा नजीर अहमद के मामले में न्यायिक समिति के निर्णय से निम्नलिखित वाक्य पर भरोसा रखा गया है, जो उस निर्णय से टिप्पणियों का तुरंत अनुसरण करता है जो एस. एन. भासक के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के उनके लॉर्डशिप्स द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किए गए थे, पुनः प्रस्तुत किए गए हैंः-"इसमें कोई संदेह नहीं है,

यदि कोई संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, और अभी भी अधिक यदि किसी भी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो पुलिस को जांच करने का कोई अधिकार नहीं होगा और इस कारण से न्यूसम जे. ने M.M.S.T में सही निर्णय लिया होगा। चिदंबरम चेट्टियार बनाम शमंघम पिल्लई।

(15) ख्वाजा नजीर अहमद के मामले के इस वाक्य को एस. एन. भासक के मामले में उद्धृत नहीं किया गया था, लेकिन उस निर्णय में यह इंगित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों की सीमा के बारे में दृष्टिकोण का अनुमोदन व्यक्त करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय के उनके लॉर्डशिप उन मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार के संबंध में इस अंतिम वाक्य में व्यक्त किए गए विचार से सहमत होने के लिए इच्छुक नहीं थे, जहां पुलिस को जांच करने का कोई अधिकार नहीं है।

(16) एम. एम. एस. टी. चिदम्बरम चेट्टियार बनाम षणमुघम पिल्लै वाले मामले में न्यायमूर्ति न्यूसम के निर्णय के अवलोकन पर, जिसका उल्लेख ख्वाजा नजीर अहमद के मामले (3) के निर्णय से उपरोक्त उद्धरण में किया गया है, हम पाते हैं कि न्यायमूर्ति न्यूसम ने यह राय व्यक्त की थी कि उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक कोई आदेश पारित करने की अंतर्निहित अधिकारिता है, और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय उन कार्यों के लिए विशिष्ट और द्वेषपूर्ण आपराधिक अभियोजन को रोकने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है, जो यद्यपि कड़ाई से अपमानजनक हैं, फिर भी अपराधों के बराबर नहीं हैं। दांडिक प्रक्रिया संहिता की धारा 561-क के अधीन उस आवेदन में उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए मामला एक शिकायत से उत्पन्न हुआ जो भारतीय दंड संहिता की धारा 415 और 417 के अधीन मजिस्ट्रेट के न्यायालय में स्थापित की गई थी। उस शिकायत के लंबित रहने के दौरान, अभियुक्त के खिलाफ उसी मामले के संबंध में एक दीवानी मुकदमा भी दायर किया गया था। इसके बाद आरोपी ने मजिस्ट्रेट के पास इस याचिका पर आपराधिक शिकायत के साथ आगे नहीं बढ़ने के लिए आवेदन किया कि यह किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करता है और उसे मजबूर करने, परेशान करने और अपमानित करने के लिए दायर किया गया था। मजिस्ट्रेट ने इस अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार कर दिया, आरोपी ने मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने खिलाफ लंबित कार्यवाही को रद्द करने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय का रुख किया। अपने समक्ष मामले के तथ्यों की जांच करने पर, न्यायमूर्ति न्यूसम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि शिकायत "प्रत्यक्ष रूप से यह नहीं दर्शाती है कि कोई आपराधिक अपराध किया गया था" और तदनुसार, याचिका को स्वीकार करते हुए, कार्यवाही को यह कहते हुए रद्द कर दिया कि "यह टेरोरम में दायर किया गया था"।

(17) इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्युसाम, जे. का यह एकल पीठ निर्णय भी, जिसे ख्वाजा नजीर अहमद के मामले में न्यायिक समिति के लॉर्डशिप्स द्वारा अनुमोदनपूर्वक निर्दिष्ट किया गया है, विभेदक है, और यद्यपि यह इस प्रस्ताव के लिए एक प्राधिकरण है कि यदि न्यायालय में स्थापित किसी शिकायत में किसी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को निरस्त किया जा सकता है, यह यह निर्धारित नहीं करता है कि तब भी जब मामला न्यायालय में लंबित नहीं है, लेकिन अभी तक जांच के चरण में है, उच्च न्यायालय कदम उठा सकता है और जांच को रोक सकता है यदि पुलिस के पास दर्ज की गई पहली सूचना रिपोर्ट किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है। ख्वाजा नजीर अहमद के मामले में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियां। अर्थात्, "इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, और फिर भी यदि किसी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो पुलिस को पुलिस के समक्ष रखी गई जानकारी पर जांच करने का कोई अधिकार नहीं होगा", जिसका उल्लेख ऊपर किया गया था, हालांकि, इस तर्क का समर्थन करने के लिए कि उच्च न्यायालय द्वारा जांच को रोकने के लिए हस्तक्षेप करने पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है जहां किसी अपराध का खुलासा नहीं किया गया है। कानून के इस कथन को ध्यान में रखते हुए, चरम स्थिति, जिसे विद्वान राज्य के वकील द्वारा तर्कों के प्रारंभिक चरणों में लिया गया था, कि इस न्यायालय को पुलिस द्वारा जांच में हस्तक्षेप करने

की कोई शक्ति नहीं है, यहां तक कि संहिता की धारा 561-ए के तहत कार्य करना भी अनुपलब्ध प्रतीत नहीं हो सकता है।

(18) तथापि, न्यायिक समिति के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपतियों के निर्णयों से एक बात बहुत स्पष्ट है, जिसका निर्देश पहले किया जा चुका है और यह है कि उच्च न्यायालय उस अपराध के अन्वेषण में हस्तक्षेप नहीं करेगा जिसके बारे में पुलिस को विधिपूर्वक अभिगृहीत किया गया है। यह अभिधारणा है कि पुलिस के पास विशेष मामले की जांच करने का अधिकार होना चाहिए और जांच कानून के प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए। इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि पुलिस के पास जांच करने का कोई अधिकार नहीं है या कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करते हुए जांच कर रही है, तो अदालत को जांच एजेंसी को कानून की सीमा के भीतर रखने के लिए कदम उठाने का अधिकार होगा। मामलों की जाँच से संबंधित विभिन्न प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि जाँच कानून के अनुसार और कुछ हद तक मजिस्ट्रेट की देखरेख में की जानी चाहिए। जाँच के दौरान पुलिस न्यायालय की सहायता प्राप्त कर सकती है और जाँच की प्रगति के लिए आवश्यक मजिस्ट्रेट या न्यायालय के आदेशों को प्राप्त कर सकती है और इसे सच्चाई तक पहुँचाने में सक्षम बना सकती है। ऐसी सहायता किसी अभियुक्त व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए तलाशी वारंट या वारंट प्राप्त करने, धारा 87/88, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही, भगोड़े की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए, या दस्तावेजों के उत्पादन के लिए प्रक्रिया आदि के रूप में हो सकती है। जहां किसी अभियुक्त को जाँच के दौरान गिरफ्तार किया जाता है, उसे 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना चाहिए और समय-समय पर उसकी रिमांड प्राप्त की जानी चाहिए ताकि पुलिस जाँच जारी रख सके। मजिस्ट्रेट के न्यायालय से ऐसी सहायता मांगते समय, पुलिस न्यायालय की प्रक्रिया का आह्वान करती है, और यदि यह पाया जाता है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है, तो या तो संबंधित न्यायालय इसे जारी करने से इनकार कर सकता है या उच्च न्यायालय, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए की भाषा के अनुसार, स्वयं किसी उपयुक्त मामले में न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए कदम उठा सकता है या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित कर सकता है। तथापि, यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि एस. एन. बसफ्क के मामले में, उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपतियों ने इस तथ्य के बावजूद हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया कि अभियुक्त न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ था, स्वयं आत्मसमर्पण कर दिया था और जमानत पर भर्ती हो गया था, और उन्होंने ख्वाजा नजीर अहमद के मामले में व्यक्त विचार को दोहराया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 और 156 के तहत, पुलिस को मजिस्ट्रेट से किसी भी अधिकार के बिना किसी भी कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने का वैधानिक अधिकार है, यह कहते हुए किः-"जांच करने की पुलिस की इस वैधानिक शक्ति में धारा 439 के तहत या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत अदालत की अंतर्निहित शक्तियों के तहत हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

(19) ख्वाजा नजीर अहमद के मामले के तथ्यों का उल्लेख करते हुए, हालांकि, यह संदेहपूर्ण है कि क्या जांच में केवल इसलिए हस्तक्षेप किया जा सकता है क्योंकि पुलिस के पास दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट या जिस जानकारी के आधार पर पुलिस जांच शुरू करती है, वह एक संज्ञेय अपराध नहीं है। जिस मामले में उनके लॉर्डशिप्स ऑफ द प्रिवी काउंसिल काम कर रहे थे, उस मामले में यह बताया गया था कि संहिता की धारा 154 के तहत दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपराध नहीं पाया गया था, लेकिन बाद में कुछ जानकारी पुलिस को दी गई थी, जिस पर उसने जांच जारी रखी। यह तर्क दिया गया था कि पुलिस द्वारा बाद में एकत्र की गई जानकारी प्रथम सूचना रिपोर्ट का स्थान नहीं ले सकती थी क्योंकि यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयान की प्रकृति में थी, और इस प्रकार कोई संज्ञेय अपराध नहीं था जिसमें पुलिस जांच करने की हकदार थी। उनके लॉर्डशिप्स ने इस तर्क को खारिज कर दिया और इस प्रकार कहाः-"लेकिन किसी भी मामले में सूचना रिपोर्ट की प्राप्ति और रिकॉर्डिंग आपराधिक जांच की स्थापना के लिए पूर्ववर्ती शर्त नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिकांश मामलों में आपराधिक अभियोजन इस तरह से प्राप्त और दर्ज की गई जानकारी के परिणामस्वरूप किया जाता है, लेकिन उनके नेतृत्व को कोई कारण नहीं दिखता है कि पुलिस, यदि अपने स्वयं के ज्ञान के माध्यम से या विश्वसनीय हालांकि अनौपचारिक खुफिया जानकारी के माध्यम से, जो वास्तव में उन्हें इस विश्वास की ओर ले जाती है कि एक संज्ञेय अपराध किया गया है, तो कथित मामलों की सच्चाई की जांच क्यों नहीं करनी चाहिए।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157, यह निर्देश देते समय कि एक पुलिस अधिकारी, जिसके पास सूचना से या अन्यथा संदेह करने का कारण है कि एक अपराध जिसे वह धारा 156 के तहत जांच करने के लिए सशक्त है, तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करने के लिए आगे बढ़ेगा, इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है। वास्तव में एक सूचना रिपोर्ट के प्रावधान जिन्हें आमतौर पर प्रथम सूचना रिपोर्ट कहा जाता है, अन्य कारणों से अधिनियमित किए जाते हैं। इसका उद्देश्य कथित आपराधिक गतिविधि की प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करना, परिस्थितियों को भूलने या अलंकृत करने का समय आने से पहले उन्हें दर्ज करना है, और यह याद रखना होगा कि सूचना देने वाले की जांच करने पर रिपोर्ट को सबूत में रखा जा सकता है यदि वह ऐसा करना चाहता है।

(20) मामले के इस दृष्टिकोण में, यह तर्क कि यदि कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो इसे उस पर की गई कार्यवाही, यदि कोई हो, के साथ रद्द किया जाना चाहिए, इस प्रकार पुलिस को मामले की जांच करने से रोकना, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ये टिप्पणियां, सम्मान के साथ बोलते हुए, संहिता की धारा 156 और 157 के प्रावधानों के अनुरूप हैं, जिसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि पुलिस द्वारा जांच हाथ में लेने से पहले, एक लिखित रिपोर्ट होनी चाहिए जिसमें एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करने वाले तथ्य होने चाहिए। एक अलग दृष्टिकोण से चौंका देने वाले परिणाम सामने आएंगे। उस मामले को लीजिए जहाँ पुलिस को सड़क पर एक शव मिलता है जिस पर चोट का कोई स्पष्ट निशान नहीं होता है। कोई नहीं जानता कि मृतक का अंत कैसे हुआ था। पुलिस को केवल शव की उपस्थिति के बारे में सूचित किया जाता है या एक पुलिस अधिकारी को बस यह पता चलता है। क्या यह किसी भी गंभीरता के साथ तर्क दिया जा सकता है कि ऐसे मामले में यदि कोई पुलिस अधिकारी यह पता लगाने के लिए जांच शुरू करता है कि क्या मृतक के संबंध में कोई अपराध किया गया है, तो ऐसी जांच को रोका जा सकता है या केवल इसलिए आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि जिस जानकारी पर यह शुरू होता है वह एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करता है? कुछ जांच के बाद ही पुलिस यह पता लगाने की स्थिति में होगी कि क्या यह प्राकृतिक मृत्यु, आत्महत्या या गैर इरादतन हत्या या हत्या का मामला है। यदि यह तर्क, कि जब तक पुलिस न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम नहीं है कि उसके पास किसी संज्ञेय अपराध के होने के बारे में जानकारी है, वह जाँच के लिए आगे नहीं बढ़ सकती है, तो यह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऊपर बताए गए मामले जैसे मामले में, न्यायालय को हस्तक्षेप करना चाहिए और जाँच को रोकना चाहिए। यह, मेरी राय में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के प्रावधानों या संहिता के किसी अन्य प्रावधान द्वारा समर्थनीय नहीं है। यदि ऐसे मामलों में अन्वेषण रोकने की शक्ति का प्रयोग किया जाता है, यह मानते हुए कि ऐसी शक्ति धारा 561-ए, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायालय में निहित है, न्याय के उद्देश्यों को बढ़ावा देने के बजाय स्वयं न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है, इस प्रकार उन उद्देश्यों को विफल कर सकता है जिनके लिए न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना है।

(21) निश्चित रूप से किसी मामले का अन्वेषण करने में पुलिस को विधि द्वारा प्रदत्त अपने अधिकार की सीमाओं के भीतर कार्य करना होता है और यदि वह अपराधों के अन्वेषण से संबंधित प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए उन सीमाओं या कार्यों को पार करती है, तो पीड़ित पक्ष को पर्याप्त राहत दी जा सकती है, लेकिन ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए भी, न्यायालय को अत्यधिक सावधानी के साथ कार्य करना पड़ता है, और जैसा कि अच्छी तरह से तय किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत शक्तियों का प्रयोग केवल असाधारण मामलों में और सबसे कम मात्रा में किया जाना है। ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय को अपराधों की जाँच में हस्तक्षेप करने के जोखिम से बचना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप यदि आगे बढ़ने की अनुमति दी जाती है तो अपराधियों को कानून के दायरे में लाया जा सकता है।

(22) हमारे समक्ष मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हम पाते हैं कि इस मामले में जांच अनुचित रूप से लंबी हो गई थी और यदि इसे बिना देरी के समाप्त नहीं किया जाता है तो यह आरोपी के उत्पीड़न का कारण बनने के लिए बाध्य है। हालाँकि, हम याचिकाकर्ता के वकील से सहमत नहीं हैं कि पुलिस के सामने रखी गई जानकारी प्रथम दृष्टया किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है। यदि जांच में यह पाया जाता है कि कोई अपराध नहीं किया गया है, तो पुलिस के पास याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने का कोई अधिकार नहीं होगा,

लेकिन यदि पुलिस, जांच के अंत में, यह पाती है कि एकत्र की गई सामग्री एक अपराध का खुलासा करती है, भले ही यह माना जाए कि उसके द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं होता है, तो उसे आरोपी के मुकदमे के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत अदालत को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी।

(23) यह केवल एक संज्ञेय अपराध के संबंध में है कि पुलिस मजिस्ट्रेट से कोई अधिकार मांगे बिना जांच करने का हकदार है। भले ही जांच अधिकारी को जांच से वैध रूप से जब्त नहीं किया जाता है, जांच में अवैधता या अनियमितता मुकदमे को दूषित नहीं करेगी और अब यह अच्छी तरह से तय प्रतीत होता है कि जहां जांच कानून के अनुसार या सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं की जाती है, न्यायालय के पास अवैधता को दूर करने के लिए फिर से जांच का आदेश देने की शक्ति है। एच. एन. रिशबुद और एक अन्य बनाम दिल्ली राज्य के मामले में न्यायालय की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति जगन्नाधदास ने कहाः "जांच में कोई दोष या अवैधता, चाहे कितनी भी गंभीर क्यों न हो, का संज्ञान या मुकदमे से संबंधित क्षमता या प्रक्रिया पर कोई सीधा असर नहीं पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक पुलिस रिपोर्ट जो एक जांच से प्राप्त होती है, दंड संहिता की धारा 190 में प्रदान की जाती है। P.C. वह सामग्री जिस पर संज्ञान लिया जाता है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि एक वैध और कानूनी पुलिस रिपोर्ट संज्ञान लेने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आधार है। ऐसी अमान्य रिपोर्ट अभी भी धारा 190 (1) के खंड (ए) या (बी) के तहत आ सकती है (चाहे वह एक या दूसरे पर विचार करने के लिए हमें रुकने की आवश्यकता नहीं है) और किसी भी मामले में इस तरह से लिया गया संज्ञान केवल मुकदमे के पूर्ववर्ती कार्यवाही में त्रुटि की प्रकृति में है। ऐसी स्थिति के लिए धारा 537, दंड संहिता। पी. सी. आकर्षित होता है।

यदि, इसलिए, वास्तव में, जांच से संबंधित एक अनिवार्य प्रावधान के उल्लंघन से दूषित एक पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लिया जाता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि मुकदमे के परिणाम, जो इसके बाद आता है, को तब तक दरकिनार नहीं किया जा सकता है जब तक कि जांच में अवैधता को न्याय की विफलता के बारे में नहीं दिखाया जा सकता है।

आगे बोलते हुए, उनके लॉर्डशिप ने कहाः "हालांकि, यह नहीं है कि मुकदमे के दौरान अदालत द्वारा जांच की अयोग्यता को पूरी तरह से नजरअंदाज किया जाना चाहिए। जब इस तरह के अनिवार्य प्रावधान के उल्लंघन को पर्याप्त रूप से प्रारंभिक चरण में न्यायालय के संज्ञान में लाया जाता है, तो न्यायालय को संज्ञान लेने से इनकार नहीं करते हुए, अवैधता को ठीक करने के लिए आवश्यक कदम उठाने होंगे-और दोष को ठीक करना होगा; इस तरह के पुनर्निरीक्षण का आदेश देकर जैसा कि एक व्यक्तिगत मामले की परिस्थितियों में आवश्यक हो सकता है।

इसलिए, हमारी राय में, जब इस तरह के उल्लंघन को मुकदमे के प्रारंभिक चरण में न्यायालय के संज्ञान में लाया जाता है, तो न्यायालय को उल्लंघन की प्रकृति और सीमा पर विचार करना होगा और ऐसी पुनः जांच के लिए उचित आदेश पारित करना होगा, जो पूरी तरह से या आंशिक रूप से, और ऐसे अधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 5-ए की आवश्यकताओं के संदर्भ में उचित समझता है।

(24) मध्य प्रदेश राज्य बनाम वीरेश्वर राव अग्निहोत्री में अपने बाद के निर्णय में भी, उच्चतम न्यायालय ने दोहराया कि जाँच में दोष मामले का परीक्षण करने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को छीन नहीं लेगा। ये और उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपत्यों के समान निर्णय स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि यदि न्यायालय के समक्ष जांच में अवैधता को न्यायालय के संज्ञान में लाया जाता है और प्रारंभिक स्तर पर न्यायालय को आदेश देकर दोष को दूर करने की शक्ति है कि उस मामले में लागू कानून के प्रावधानों के अनुसार मामले की फिर से जांच की जाए। मामले के इस दृष्टिकोण में, यह व्यापक प्रस्ताव कि न्यायालय किसी भी मामले में मामले की जांच में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, उचित नहीं प्रतीत होता है। आपराधिक अपराधों की जांच से संबंधित दंड प्रक्रिया संहिता में निहित विभिन्न प्रावधानों के संदर्भ में, यह देखा जाएगा कि जांच पूरी तरह से न्यायालय से स्वतंत्र नहीं है, बल्कि मजिस्ट्रेट, जूनियर की देखरेख में कुछ हद तक सीमित है, जिससे न केवल जांच अधिकारी बल्कि आरोपी द्वारा भी आवश्यक प्रक्रिया जारी करने और मामले की उचित और निष्पक्ष जांच के लिए आदेश पारित करने के

लिए संपर्क किया जा सकता है। तथापि, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय के उनके अधिपतियों द्वारा और इससे पहले ख्वाजा नजीर अहमद के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्णय दिया गया था, जांच की शक्ति जहां तक यह विशेष रूप से पुलिस या जांच एजेंसी में निहित है, अदालतों द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, और जांच एजेंसी को बिना किसी हस्तक्षेप के जांच करने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। हालाँकि, यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित करता है कि जाँच जब तक कानून के प्रावधानों के अनुसार है, उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और यह जाँच को प्रतिरक्षा नहीं देता है जो विशेष मामले को नियंत्रित करने वाले कानून के प्रासंगिक प्रावधानों के अनुरूप नहीं है या उनका उल्लंघन कर रहा है।

(25) हाथ में मामले के उपरोक्त तथ्यों के लिए अदालत द्वारा निर्धारित सिद्धांत को लागू करते हुए, हम पाते हैं कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत किसी भी आदेश या निर्देश को जारी करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित आरोपों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, हमने यह राय बनाई है कि इस रिपोर्ट में लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं जिसकी पुलिस जांच करने की हकदार है। हालाँकि, हम यह देखने में मदद नहीं कर सकते कि जाँच अनुचित रूप से लंबी हो गई है, और जिस तरह से इसे किया गया है, वह याचिकाकर्ताओं के मन में एक धारणा पैदा करने के लिए बाध्य था कि पुलिस उन्हें परेशान करने के लिए थी।

पूर्वगामी कारणों से, हम इस आवेदन में कोई बल नहीं पाते हैं और इसे खारिज करते हैं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

आकांक्षा सैनी

प्रशिक्षु न्यायिक पदाधिकारी

सोनीपत(हरियाणा)